मई १९८८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

अध्यापक संगोष्ठी - १९८७

क्रमशः (।।।)

दीक्षान्त प्रवचन का सार

शिविर - समाप्ति के पश्चात् पूज्य गुरूजी ने अपने दीक्षान्त प्रवचन में शिविर में से निकले शिक्षकों तथा शिक्षाप्रेमियों को सम्बोधन करते हुए कहा कि आप सब बड़े महत्व का शिविर समाप्त करके घर लौट रहे हैं, धर्म का कल्याणकारी सन्देश लेकर लौट रहे हैं, यह सन्देश भारत की नई पीढ़ी तक पहुंचाएं।

यह सन्देश उन तक **उपदेश** के रूप में कदापि न पहुंचे। क्या होगा उपदेशों से? आज से २,५०० वर्ष पूर्व जब पांच पके हुए लोग तैयार हुए और यह संख्या बढ़ते-बढ़ते साठ तक जा पहुंची तब भगवान् तथागत ने उन्हें भेजा धर्म का सन्देश देने के लिए। उस समय उनसे **उपदेश** देने के लिए नहीं कहा, बल्कि यह कहा –

शुद्ध धर्म का प्रकाशन करो! प्रकाशित हो धर्म!!

धर्म वाणी से प्रकाशित नहीं होता, जीवन-चर्या से प्रकाशित होता है। यदि हम स्वयं धर्म का जीवन जीने लगें तो लोग स्वतः ही इस ओर आकर्षित होने लगेंगे।

यहाँ से लौट कर शिक्षक-शिक्षिकाओं को यही काम करना है। अतः पहले विद्यार्थी देखें कि कितना परिवर्तन आया है आप में। ये देखें कि पहले आप किस कदर बेंत पीटते थे, चीखते-चिल्लाते थे और अब होठों पर मुस्कराहट ही मुस्कराहट! क्या हो गया है आपको? तब यह बात फैलेगी कि अब आप **विपश्यना** करने लगे हैं। तो जिज्ञासा जागेगी कि **विपश्यना** क्या होती है? क्या "विपश्यना" करने से इन्सान सचमुच बदल जाता है? विद्यार्थी भी चाहता है कि यह जो मैं बार-बार तनाव में आ जाता हूँ, व्याकुल हो उठता हूँ, किसी तरह इससे बाहर निकलूं।

नई पीढ़ी के बच्चों तक दो बातें तो पहुंचनी ही चाहिए –

एक तो यह कि **धर्म** और **सम्प्रदाय** में कोई तालमेल नहीं होता और दूसरे यह कि **धर्म** धारण करने से ही कल्याण होता है, कोरे उपदेशों से नहीं।

"धर्म" और "सम्प्रदाय" –

धर्म और **सम्प्रदाय** का आपस में कहीं दूर-परे का भी सम्बन्ध नहीं होता। सम्प्रदायवादी विपश्यना में आगे बढ़ नहीं सकता। उसका यह क्षेत्र ही नहीं है। उसके सिर पर तो हमेशा सम्प्रदाय का ही भूत सवार रहता है। वह अपनी दार्शनिक मान्यताओं, कर्मकाण्डों, व्रत-त्योहारों में इतना उलझा रहता है कि शुद्ध धर्म को धारण ही नहीं कर पाता। वह शील-सदाचार का पालन करे या न करे, फिर भी अपने आपको **धर्मवान्** मानता चला जाता है। अपने मन को वश में करने का कोई प्रयास न करने पर भी अपने आप को **धर्मवान्** मानता रहता है। अपने मन की जड़ों से विकार निकालने का कोई काम न करते हुए भी अपने आप को **धर्मवान्** मानता है। जो व्यक्ति इस धोखे से बाहर निकल आता है वह तड़पने लगता है कि भाई, 'मेरे पास **धर्म** नहीं है।' वह खूब समझने लगता है कि यह सारा पूजा-पाठ, कर्म-काण्ड, मन्दिरों-मस्जिदों- देवालयों- गिरजाघरों में जाना तो इसलिए करते हैं क्योंकि हमारे समाज के लोग करते हैं, हमें इनके साथ रहना है, इनके साथ समरस होना है। केवल यही-यही करते रहने से मैं **धर्मवान्** नहीं हो गया क्योंकि इसके बावजूद भी विकार तो जागते ही हैं और इनके जागते ही मैं व्याकुल हो जाता हूँ और दूसरे को भी दुःखी बनाता हूँ।

भारत में **धर्म** और **सम्प्रदाय** पर्यायवाची हो जाने से सब जगह विष फैल गया है। लोग **धर्म** के नाम पर लड़ते हैं और खून-खराबा करते हैं। निरपराध लोगों की हत्या करते हुए भी बड़े गर्व से कहते हैं – "यह हमारे धर्म का दुश्मन था, इसलिए मार डाला।" अरे, तेरे धर्म का दुश्मन तो तू है जिसने अपने भीतर क्रोध जगाया, द्वेष जगाया और एक निरपराध की हत्या कर दी। तेरे से बड़ा धर्म का दुश्मन कौन होगा रे!

कोई-कोई बावलेपन में कहता है कि मैं **धर्म-युद्ध** करता हूँ। अरे, धर्म-युद्ध तो अपने भीतर अपने विकारों से होता है। अपने विकारों को परास्त करके उन्हें दूर कर दें तब तो **धर्मयुद्ध** हुआ। किसी अन्य सम्प्रदाय वाले की हत्या करके कहता है कि धर्मयुद्ध कर रहा हूँ तो कितना नासमझ है। सारे देश में कैसा अंधेरा छा गया है!!

जात-पात का विष –

जैसे सम्प्रदाय का भेदभाव विषैला वैसे ही जात-पात का। यदि धर्म सिखाने वाला व्यक्ति जात-पात के जंजाल से बाहर नहीं निकला तो वह कदापि धर्म नहीं सिखा पाएगा। "मैं ऊंची जात वाला"- इस प्रकार के विभाजन से धर्म का कोई सरोकार नहीं होता। मनुष्य-मनुष्य का विभाजन धर्म के आधार पर ही होना चाहिए। जैसे, यह व्यक्ति धर्म में प्रतिष्ठित हुआ या नहीं, यह धर्म के रास्ते चलता ही नहीं, यह चलने लगा, यह प्रतिष्ठित हो गया, इत्यादि।

उक्त प्रकार का विभाजन होने पर हर व्यक्ति अपने प्रयत्नों द्वारा नीची से नीची अवस्था से ऊंची से ऊंची अवस्था तक पहुंच सकता है। स्कूल में पहली कक्षा का विद्यार्थी पहली कक्षा वाला कहलाएगा, पांचवी कक्षा का पांचवी कक्षा वाला, दसवीं कक्षा का दसवीं कक्षा वाला परन्तु पहली कक्षा वाले को पांचवी कक्षा में आने में रोक कहां और पांचवी कक्षा वाले को दसवीं कक्षा में आने में बाधा कहां? लेकिन अगर कहते हैं कि इस जात वाला है या उस जात वाला है तो दोनों के बीच दीवार खड़ी हो गई। अब इस जात वाला है तो उस जात वाला कैसे बने? बन ही नहीं सके तो **धर्म** समझ में नहीं आया।

"धर्म" धारण करें –

नई पीढ़ी के बच्चों तक पहुंचाने वाली दूसरी बात यह कि **धर्म** धारण करने से मंगल सधता है, कोरे उपदेशों से नहीं। बच्चों के मन में धर्म भावित कराना चाहिए। उनको प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा समझाना चाहिए कि देखो, जब जब तुम्हारे मन में क्रोध जागता है तब तब दुःखी हो जाते हो न? तब बच्चा अपने अनुभव से जानेगा कि जब क्रोध जागता है तब मैं वास्तव में दुःखी हो जाता हूँ। तो क्रोध जगाना बुरा हुआ न! तब उसकी समझ में आएगा कि मुझे क्रोध नहीं जगाना चाहिए।

इसी तरह जब क्रोध नहीं जागता, न कोई और विकार जागता है, तब तुम्हारा मन शान्त रहता है न? तब बच्चे को समझ में आएगा कि यह बात तो ठीक ही है। जब मेरे मन में क्रोध नहीं जागता, ईर्ष्या नहीं जागती, भय नहीं जागता, तब मेरा मन शान्त रहता है। तो तू शान्त रहना पसन्द करता है या व्याकुल होना? व्याकुल होना कौन पसन्द करता है? अब चूंकि घटना घट रही है उसके भीतर तो धर्म भावित होता जा रहा है। उसमें यह भावित होने वाला धर्म उसे कल्याण के रास्ते पर ले आता है।

यदि बच्चे को यही कहा जाए कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, यह मत करो, वह मत करो तो जो इस कान से सुना, उस कान से निकल

गया। मानों गुरूजी ने ही खड़ा करके पूछा कि बताओ, कौन-कौनसे शील होते हैं? और बच्चे ने पांचों शील सुना दिए तो पूरे अंक तो मिल गए परन्तु कोई काम की बात नहीं हुई क्योंकि ये शील भावित नहीं हुए। इसलिए कि जीवन में उतरे नहीं। यदि शील भावित हो जाएं तो बच्चे का चरित्र सुधरने लगे। कोरे उपदेश से ऐसा होता नहीं।

साँस का काम –

बच्चों को नया-नया काम सांस का सिखलावें। उन्हें बतलाएं कि देखो, जब जब तुम्हारे मन में विकार जागता है- भय जागे, क्रोध जागे या कुछ भी जागे - तेरा सांस तेज हो जाता है न! सामान्य नहीं रहता न! एक बार, दो बार अनुभव करेगा तो वह भी यही बात पाएगा। तब उसकी समझ में यह बात आ जायगी कि मेरे मन में जब जब सांस अस्वाभाविक हो तब तब उसको देख कर स्वाभाविक बना सकते हैं। इस तरह से बात बड़ी जल्दी समझ में आ जाती है बच्चे को। अतः छोटी -छोटी बातें उनके ही अनुभव से बच्चों को सिखलाई जाएं तो उसका असर गहरा होता है।

विपश्यना –

जब बच्चे विपश्यना करना सीख जाएं तब भी सारी बात अपने ही अनुभव से जानें। उन्हें यों समझाना पड़ेगा कि इन चार लोगों को देखो और बतलाओ कि इनमें क्या फर्क मालूम होता है- एक ने बहुत बड़ी चोटी लगा रखी है, दूसरे ने बहुत बड़ी दाढ़ी बढ़ा रखी है, तीसरे ने अपना सिर घुटा रखा है, चौथे ने लम्बे-लम्बे केश बढ़ा रखें हैं। इन चारों को ध्यान से देखने से जानेंगे कि ये सभी विकार जगाते हैं और व्याकुल हो जाते हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं है। अगर चोटी लगाने से विकार न जगाते होते तो सबसे कहते कि चोटी लगाओ जिससे विकार जागने बन्द हो जाएं। ऐसे ही सिर मुंडाने से या लम्बे-लम्बे केश रखने से विकार न जगाते होते तो सब को वैसा ही करने के लिए कहते ताकि विकार पास में न फटक पाते। तब बच्चों को शनैः शनैः यह बात समझ में आने लगेगी कि इन बाहरी बाहरी चीजों से कुछ नहीं होता, कुदरत के कानून को **धर्म** कहते हैं जो सब पर समान रूप से लागू होता है।

इसी प्रकार बच्चों को यह भी समझ में आने लगेगा कि **सम्प्रदाय** से **धर्म** का कोई सम्बन्ध नहीं होता। कोई व्यक्ति पीले कपड़े लगाए या सफेद या काला चोगा पहन ले - इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सब अपने भीतर विकार जगाते हैं और व्याकुल हो जाते हैं। कुदरत किसी का पक्षपात नहीं करती। अतः ग्रहण करने योग्य बात यह कि हम अपने भीतर विकार न जगाएं। इस कपड़े या उस कपड़े में कुछ नहीं रखा, यह बात समझ में आने लगेगी।

फिर व्रत-त्योहार करने वालों को देखेगा। एक आदमी एक प्रकार के व्रत-त्योहार मनाता है, दूसरा दूसरे प्रकार के ,तीसरा तीसरे प्रकार के ।इन्हें देखने से स्पष्ट होगा कि ये अलग अलग तरह के व्रत-त्योहार मनाने वाले भी व्याकुल होते हैं और कोई व्रत-त्योहार न मनाने वाला भी व्याकुल होता है। तब यह बात समझ में आने लगेगी कि व्रत-त्योहारों के मनाने या न मनाने से मन की व्याकुलता का कोई सम्बन्ध नहीं होता।

ऐसे ही जगह जगह माथा नवाने वालों को देखता है। एक व्यक्ति मन्दिर में जाकर सिर नवाता है, दूसरा मस्जिद में, तीसरा गिरजाघर में चौथा चैत्य में, पांचवां गुरुद्वारे में। ये सभी विकार जगाते हैं और व्याकुल हो जाते हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता अमुक-अमुक जगह जाने से। बच्चों को यह बात बहुत जल्दी समझ में आ जाएगी पर पहले समझाने वाला तो समझे इसे! यदि समझाने वाला ही यह बात नहीं समझा तो बच्चों को क्या समझा पाएगा!

अब रही दार्शनिक मान्यताएं! एक कहता है हमारे भीतर एक अलग-थलग आत्मा है, दूसरा कहता है कि नहीं है। दोनों को ध्यान से देखने से पता चलता है कि दोनों ही विकार जगाते हैं और व्याकुल हो जाते हैं। आत्मा को मानने या न मानने से विकार निकलने में कोई सहारा नहीं मिलता। एक कहता है "ईश्वर है" दूसरा कहता है "ईश्वर नहीं है"। ध्यान से देखने से पता चलता है कि दोनों एक-जैसे हैं। दोनों विकार जगाते हैं और व्याकुल हो जाते हैं।

और फिर एक कहता है कि आत्मा इतनी बड़ी है जितना बड़ा शरीर। दूसरा कहता है नहीं नहीं, इतनी बड़ी नहीं, अंगूठे जितनी बड़ी। तीसरा कहता है जितना बड़ा तिल। चौथा कहता है जितना बड़ा बाल। चारों को ही ध्यान से देखने से पता चलता है कि ये सभी विकार जगाते हैं और व्याकुल हो जाते हैं। चारों में कोई भेद नहीं। एक कहता है कि ईश्वर दो हाथ वाला है, दूसरा कहता है कि चार हाथ वाला है। यह कहता है कि गहने पहनने वाला है, वह कहता है कि नहीं, ऐसा नहीं है, उसके हाथ-पांव नहीं होते, वह निराकार है। इन सबको देखने से भी इनमें कोई फर्क मालूम नहीं देता। यह कहता है आत्मा और परमात्मा एक ही है, वह कहता है नहीं, अलग-अलग हैं। इनमें भी कोई फर्क मालूम नहीं देता। तो समझ में आने लगेगा कि सारी दार्शनिक बातें बावलेपन की बातें हैं, इनका धर्म से कोई लेन-देन नहीं होता।

धर्म क्या है?

धीरे-धीरे एकदम स्पष्ट हो जायगा कि **धर्म** स्वभाव को कहते हैं। चित्त में जो जागता है उसका स्वभाव क्या है; वह **धर्म** है। अगर विकार जागता है तो व्याकुल होंगे ही, यह कुदरत का नियम है। इसको **धर्म** कहते हैं। यदि विकार नहीं जागता है तो चित्त का स्वभाव शान्त बने रहना है। यह **धर्म** है। जब हम बच्चों को शुरू से ही यह समझाएंगे तो यह बात उनकी समझ में आती चली जाएगी क्योंकि बात एकदम वैज्ञानिक है।

"एके साधे सब सधे –

जब बच्चों के पास शुद्ध धर्म पहुंचेगा तब उनका चरित्र अपने आप सुधरने लगेगा क्योंकि तब तो एक ही बात रह जायेगी – **एके साधे सब सधे,** अर्थात् चित्त निर्मल करो जिससे धर्मवान् बन जायें। अतः बच्चों का लक्ष्य रहेगा कि कैसे चित्त को निर्मल कर लें जिससे शान्त और सुखी बने रहें तब बच्चे यह भी समझने लगेंगे कि जब तक हम शान्त और सुखी बने रहते हैं तब तक हम कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जिससे दूसरों की सुख-शान्ति भंग हो क्योंकि दूसरों की सुख-शान्ति भंग करने से पहले अपनी सुख-शांति भंग करनी पड़ती है। परन्तु बच्चों से पहले यह बात सिखलाने वालों को समझनी होगी।

शिक्षक-शिक्षिकाओं को यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हम किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हो रहे और न किसी अन्य को होने देंगे। हमने शुद्ध धर्म की शिक्षा पाई है और इसी में लोगों को दीक्षित करेंगे। जब वे वस्तुतः ऐसा करने लगेंगे तो देखेंगे कि कितना कल्याणकारी सन्देश नई पीढ़ी तक पहुंच जाएगा।

"नई पीढ़ी" का कल्याण हो!

भारत एक धर्म-देश है। फिर भी सदियों तक इसमें अज्ञान का अन्धकार छाया रहता है। अन्धकार के बाद जब प्रकाश जागता है तब सारा विश्व ज्ञान के आलोक से चकाचौंध हो उठता है और सारे विश्व का कल्याण होने लगता है। अभी बड़े संकट का समय है। दुर्भाग्य इस बात का है कि लोग **धर्म** के नाम पर ही दुखियारे हैं।

तो यह विद्या भारत में जागे। धर्म का शुद्ध रूप जागे। लोगों को यह खूब समझ में आने लगे कि **धर्म** और **सम्प्रदाय** अलग-अलग होते हैं। नई पीढ़ी भूल कर भी इस जंजाल को अपने सिर पर न लगा ले।

सबका मंगल हो! सब का कल्याण हो! सब की स्वस्ति-मुक्ति हो!!

॥भवतु सब्ब मंगलं॥